अथ कोलेस्टेरॉल-कथा

डॉ. स्कन्द शुक्ल

अथ कोलेस्टेरॉल-कथा
लेखक: डॉ. स्कन्द शुक्ल

मुफ्त वितरण हेतु ई-पुस्तिका: 2020

सभी चित्र इन्टरनेट से साभार.

डॉ. स्कन्द शुक्ल

22 सितम्बर 1979 को राजापुर, बान्दा में जन्म. वर्तमान में लखनऊ में गठिया-रोग विशेषज्ञ के रूप में कार्यरत. वृत्ति से चिकित्सक होने के कारण लोक-कष्ट और उसके निवारण से सहज जुड़ाव. साहित्य के प्रति गहन अनुराग आरम्भ से. अनेक कविताएँ- कहानियाँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित. साथ ही दो उपन्यासों- 'परमारथ के कारने' और 'अधूरी औरत' सहित अनेक महत्वपूर्ण पुस्तिकाएं भी. सामाजिक मीडिया पर भी अनेकानेक विज्ञान-स्वास्थ्य-समाज-सम्बन्धी लेखों-जानकारियों के माध्यम से वैज्ञानिक चेतना के प्रचार-प्रसार में सक्रिय.

1.

विज्ञान जनता की अच्छी-बुरी, दोनों प्रकार की धारणाएँ गढ़ता है। यदि धारणा बुरी हुई तो वह लोगों के अवचेतन में शब्दों की विभीषक छवि उकेर देती है। ऐसी ही एक बुरी वैज्ञानिक धारणा से बुराई झेलता शब्द है कोलेस्टेरॉल। अधिसंख्य जनता अभी भी यह मानकर चलती है कि कोलेस्टेरॉल अर्थात् स्वास्थ्यनाशक 'कोई' रसायन या पदार्थ।

विज्ञान का सबसे बड़ा उत्तरदायित्व आपको गुड-बैड की बायनरी से बचाना है। जीवन में कुछ भी श्याम-श्वेत नहीं होता, धूसर के शेड लिये रहता है। परिस्थितियाँ तय करती हैं कि अमुक रसायन शरीर के लिए सदुपयोगी है अथवा दुरुपयोगी। यदि उपयोग 'सत्' हुआ, तो वह देह के लिए लाभकारी कहलाएगा और अगर 'दुः' हुआ तो हानिकारी। परिस्थितियों के अनुसार ही कोलेस्टेरॉल-प्रोटीन-सोडियम-पोटैशियम-कैल्शियम-तमाम हॉर्मोन इत्यादि को अच्छा-बुरा हमें समझना चाहिए।

कोलेस्टेरॉल के विषय में बुरी धारणाओं का वैज्ञानिक निर्माण सन् 1960 के आसपास हुआ, जब वैज्ञानिकों-डॉक्टरों ने लोगों से कोलेस्टेरॉल-युक्त भोजन बहुत कम करने को कहा। तीन-सौ मिलीग्राम के आसपास। लगभग दो अण्डे सप्ताह-भर में। सोच यह थी कि जितना अधिक कोलेस्टेरॉल-युक्त भोजन करोगे, उतना शरीर में व ख़ून में

कोलेस्टेरॉल की मात्रा बढ़ेगी। जितना अधिक कोलेस्टेरॉल, उतना अधिक हृदय-रोग। सिम्पल!

विज्ञान का काम अपने ही शोधित निष्कर्षों का सतत निर्मम विश्लेषण है। यही चलता रहा। तब आहार-वैज्ञानिकों ने जाना कि ख़ून में पायी जाने वाली कोलेस्टेरॉल की मात्रा केवल कोलेस्टेरॉल-युक्त आहार के सेवन पर निर्भर नहीं। यानी केवल इतना सरल सच मानने से काम नहीं चलने वाला कि ख़ून में ऊँची पायी गयी कोलेस्टेरॉल की मात्रा केवल 'ग़लत' भोजन के कारण बढ़ी आयी है। नतीजन यह सोचना कि अधिक अण्डे या इसी तरह का कोलेस्टेरॉल-प्रचुर भोजन खाने की वजह से ख़ून में कोलेस्टेरॉल बढ़ जाता है, सही नहीं है। शोधों के नतीजे भिन्न हैं। अनेक बार (आम तौर पर) अगर हम कोलेस्टेरॉल का सेवन दुगुना करते हैं, तो ख़ून में कोलेस्टेरॉल दुगुना नहीं होता। बल्कि उसमें केवल पाँच प्रतिशत वृद्धि होती है। ज़ाहिर है, जिनका कोलेस्टेरॉल-स्तर बढ़ा हुआ है, उनमें दोष केवल ग़लत खानपान पर नहीं। पर ऐसे में सवाल उठता है कि कौन से वे कारक हैं, जिनके कारण बिना अधिक कोलेस्टेरॉल-युक्त भोजन किये भी कोलेस्टेरॉल की मात्रा ख़ून में बढ़ जाए? उत्तर है व्यक्ति के जीन।

वे जीन जो कोलेस्टेरॉल-मेटाबॉलिज़्म के लिए आवश्यक रसायनों का निर्माण करते हैं। ऐसे रसायन जो तय करते हैं कि कोलेस्टेरॉल की मात्रा ख़ून में कितनी रहेगी। शरीर में मौजूद कोलेस्टेरॉल की बड़ी मात्रा हम भोजन से नहीं पाते, स्वयं शरीर के जीनों-रसायनों की सहायता से भीतर

बनाते हैं। यह कोलेस्टेरॉल तमाम कामों में इस्तेमाल होता है। अनेक हॉर्मोन इससे निर्मित होते हैं, अनेक मेटाबॉलिक क्रियाएँ इससे संचालित होती हैं।

पुरुष के पुरुष होने में उसके पुरुष-हॉर्मोन टेस्टोस्टेरॉन का बड़ा योगदान है। कैसे बनेगा यह हॉर्मोन बिना कोलेस्टेरॉल के? स्त्री स्त्री की तरह है, क्योंकि उसके पास ईस्ट्रोजेन और प्रोजेस्टेरॉन स्त्री-हॉर्मोन हैं। कैसे रहेगी वह स्त्री बिना कोलेस्टेरॉल से बने इन हॉर्मोनों से? विटामिन डी का निर्माण त्वचा-यकृत-वृक्क मिलकर कटे हैं। कैसे बनेगा शरीर में विटामिन डी बिना कोलेस्टेरॉल के?

समय है कि हम कोलेस्टेरॉल को कुटिल-क्रूर-कुत्सित मानना बन्द करके उसकी अच्छाई-बुराई को सविस्तार समझें। शरीर की एक कोशिका ऐसी नहीं (जी हाँ, एक भी --- जो बिना कोलेस्टेरॉल के बन सके!)। लेकिन फिर यह भी सच है कि ख़ून में मौजूद कोलेस्टेरॉल की अत्यधिक मात्रा अनेक रोगों की पृष्ठभूमि भी तैयार करती है।

अनेक लोग मानव-समाज में ऐसे हैं जिनके ख़ून में कोलेस्टेरॉल की मात्रा कोलेस्टेरॉल-प्रचुर-भोजन करने से बढ़ जाती है। पर सभी ऐसे नहीं हैं। सारे लोगों की कोलेस्टेरॉल-संवेदनशीलता अलग-अलग है। विज्ञान की ऑब्जेक्टिविटी ही जीव-विज्ञान-रिसर्च के दौरान सबसे बड़ी समस्या बनकर सामने आती है। सभी इंसान एक मेल के नहीं है, लेकिन डॉक्टर स्वास्थ्य-सम्बन्धी गाइडलाइन समूचे देश, बल्कि सारे संसार के लिए जारी कर देते हैं। एक हूक उठती है अमेरिका में --- कोलेस्टेरॉल कुत्सित है! क्रूर है! कुटिल है! पूरी दुनिया के सभी डॉक्टर अनुसरण करते हुए कहते हैं --- जी, बिलकुल कुत्सित है! क्रूर है! कुटिल है! अमेरिका से फिर स्वर गूँजता है --- कोलेस्टेरॉल खाने में कोलेस्टेरॉल-युक्त-भोजन से

सेवन से बढ़ता है! दुनिया फिर हामी भरती जाती है--- जी, बिलकुल इसी से बढ़ता है!

एक आहार-वैज्ञानिक डेविड क्लरफेल्ड इस बाबत दिलचस्प जानकारियाँ सामने रखते हैं। वे कहते हैं कि जितना हम वैज्ञानिक लैब में जानवरों को समझते हैं, उतनी देर तक हम मनुष्यों को नहीं समझते। इसी कारण अनेक बार ग़लत निष्कर्ष निकलते हैं, जिनसे समाज में ग़लत धारणाओं का प्रचार-प्रसार होता है। कोलेस्टेरॉल-सम्बन्धी ढेरों शोध हुए खरगोश पर, जो कि एक शाकाहारी जीव है। जबकि कोलेस्टेरॉल पाया जाता है पशु-उत्पादों में। अब जब शाकाहारी खरगोश पर किये शोधों के नतीजे विज्ञान सर्वाहारी मनुष्यों पर लगाएगा, तो गलतियाँ तो होंगी ही!

यह लेख कोलेस्टेरॉल-मेटाबॉल्ज़िम को विस्तार से नहीं समझाता। इसका उद्देश्य लोगों को कोलेस्टेरॉल का जैवरसायन समझाना है भी नहीं। इसे कोलेस्टेरॉल-सम्बन्धित रोगों की समझ विकसित करने के लिए भी नहीं लिखा गया। इन विषयों पर तो आगे बातचीत होगी ही। इस लेख का उद्देश्य तो रसायनों के प्रति दशकों से निर्मित बुरे पूर्वाग्रहों को तोड़ कर कबीर को याद करना है:

अति का भला न बोलना, अति की भली न चूप।

अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप।

कोलेस्टेरॉल हो, चाहे शरीर का अन्य कोई रसायन --- उसकी अति और न्यूनता दोनों बुरी हैं।

2.

एक काल्पनिक फ़िल्म का मनगढ़न्त क़िस्सा आपको सुनाता हूँ। फ़िल्म में एक खलनायक है। हत्यारा। उसे हत्याएँ करते दिखाया जाता है। इससे दर्शकों में उसके लिए धारणा बनती है। हत्या बुरी बात है, इसलिए हत्यारा भी बुरा व्यक्ति हुआ। अब इसी मनोदशा के साथ क़िस्सा आगे बढ़ता है।

आगे की कहानी में हत्यारा एक परिवार का सदस्य है। उस परिवार में अनेक लोग हैं : कुछ अन्य बुरे भी हैं, पर अनेक अच्छे भी। अब इस हत्यारे के प्रति जो धारणा हमने बनायी थी, उसमें तनिक झकझोर उठती है। इतने अच्छे घर से हो, तो बुरे काम क्यों करते हो भाई? अपने-आप को बदलो न! अपने बुरे भाइयों को भी! अच्छे सदस्यों से सीख लो!

फिर कहानी और आगे चलती है। हत्यारा हमें रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में तमाम काम करते दिखता है। तरह-तरह के उत्तरदायित्व। क़िस्म-क़िस्म की भागदौड़। ढेरों जिम्मेदारियाँ। इन्हें देखकर हमारी मनोदशा फिर हमें हिलाती है। हत्यारा इतना भी बुरा इंसान नहीं है। कम-से-कम उसे पास से देखने पर तो वह बुरा नहीं जान पड़ता। फिर वह जो दुष्कर्म जब-तब कर जाता है, उनका क्या? उन हत्याओं को इस व्यक्ति के जीवन के सापेक्ष कैसे समझा जाए? दो बातें मन में उठती हैं। कदाचित् यह व्यक्ति हत्याएँ परिस्थितिवश करता है। बाह्य परिस्थिवश, आन्तरिक परिस्थितिवश। परिस्थितियाँ इससे वे दुष्कर्म करा ले जाती हैं। समूचे

जीवन में सदैव वह दुष्कर्मी नहीं रहता। ढेरों सुकर्म करता है, सम्यक् उत्तदायित्व निबाहता है। लेकिन जब-तब पथभ्रष्ट भी होता है, कई बार दूसरों की जान तक भी ले लेता है।

मैं इस कहानी को सुनाते समय हत्यारे का बचाव नहीं करता। पर कहानी सुनने वालों से उसके जीवन के प्रति समझ विकसित करने को कहता हूँ। उसके प्रति जो भी धारणा-अवधारणा बनाइए, सविस्तार उसे समझकर बनाइए। जल्दबाज़ी में केवल एक घटना से उसे मत आँकिए। समूचा समझिए उसे। क़ानून तो उसे सज़ा देगा ही। पर क़ानून भी निष्कर्ष निकालने से पहले उसे यथासम्भव समझेगा। यही विधि-सम्मत न्याय का परिचय है।

यह हत्यारा कोलेस्टेरॉल-वाहक-प्रोटीन का एक प्रकार है। इसे एलडीएल या लो-डेंसिटी-लायपोप्रोटीन कहते हैं। इसके अनेक भाई-बहन हैं। एक एचडीएल यानी हाई-डेंसिटी-लायपोप्रोटीन है। फिर एक वीएलडीएल यानी वेरी-लो-डेंसिटी-लायपोप्रोटीन है। फिर एक कायलो-माइक्रॉन है। इन सभी लायपोप्रोटीन-परिवार-सदस्यों के शरीर में अलग-अलग काम हैं। कुछ अच्छे, कुछ बुरे। ये सेहत के लिए आवश्यक भी हैं, इनसे रोगों का भी जन्म होता है।

यहाँ एक महीन बात बतानी ज़रूरी है, जिसमें लोग अक्सर चूकते हैं। कई बार लोग जो कोलेस्टेरॉल के बारे में थोड़ा जानते हैं, सोचते हैं कि कोलेस्टेरॉल कई मेल के होते हैं। यह सच नहीं है। कोलेस्टेरॉल एक ही होता है। किन्तु शरीर में उसके ढोने वाले रसायन कई हैं, जिन्हें लायपोप्रोटीन कहा जाता है। इनमें से अनेक लायपोप्रोटीनों के नाम हमें ऊपर पढ़े हैं। तो जब कोई व्यक्ति कहता है कि एलडीएल कोलेस्टेरॉल बुरा है, तो उसका अर्थ यह होता है कि एलडीएल नामक लायपोप्रोटीन

बुरा अर्थात् रोगकारक है। जब कहा जाता है कि एचडीएल कोलेस्टेरॉल अच्छा है, तो इसका अर्थ यह है कि एचडीएल नामक लायपोप्रोटीन अच्छा यानी रोगनाशक है।

कोलेस्टेरॉल अपने-आप में केवल कोलेस्टेरॉल है। एक रसायन, जो अच्छा-बुरा दोनों है। जब-जहाँ-जैसा काम कर जाए। अब चूँकि लोग लायपोप्रोटीन शब्द को जीभ पर सरलता से धारण नहीं कर पाते, इसलिए वे कोलेस्टेरॉल शब्द को ही खलनायक के तौर पर उचारते हैं। कोलेस्टेरॉल यानी बहुत बुरा रसायन-- ऐसा उनका मानना दृढ़ होता जाता है ।

जानना चाहते हैं कि अगर कोलेस्टेरॉल न होता, तो क्या होता? न हम होते, न ही जानवर। जन्तु-कोशिका ही न बनती, तो मैं-आप क्या ख़ाक बनते! कोलेस्टेरॉल है, तो कोशिकाएँ हैं। कोशिकाएँ हैं, तो जानवर हैं और मनुष्य भी। जीवन की फ़िल्म का यह खलनायक इतना बुरा नहीं कि इसे केवल कोसा जाए। डॉक्टर जो सेहत-सम्बन्धित न्याय करते हैं, वे भी सम्पूर्णता के साथ समझ कर निर्णय लेते हैं। कोलेस्टेरॉल हममें हर जगह है, हम-जैसा है। काफ़ी अच्छा, पर थोड़ा-सा बुरा भी। कुदरत से उसे हम-सा ही बनाया है।

3.
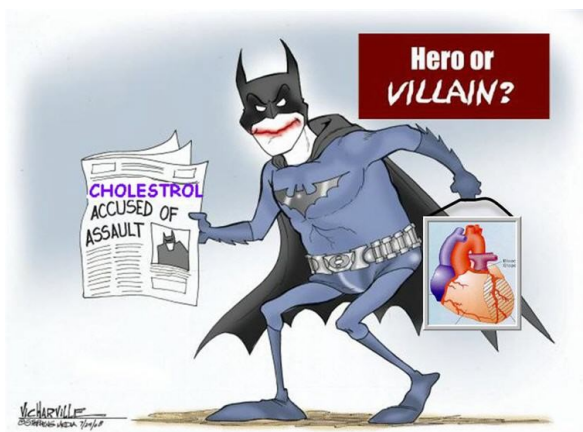
लोगों के मन में कोलेस्टेरॉल नामक रसायन को लेकर अनेक भयातुर जिज्ञासाएँ रहती हैं। किस तरह से कोलेस्टेरॉल हमारे लिए हानिकारक है? किस तरह से इसे हम नियन्त्रित कर सकते हैं? क्या इसे कंट्रोल में रखकर हृदयरोगों से मुक्ति पायी जा सकती है?

पिछले अंक में हम कोलेस्टेरॉल के शारीरिक योगदान पर कुछ चर्चा कर चुके हैं। शरीर के तमाम आवश्यक रसायन इससे बनते हैं। हर जन्तु-कोशिका का सेल-मेम्ब्रेन कोलेस्टेरॉल के बिना बन नहीं सकता। ऐसे में अगर यह रसायन न होता, तो क्या हमारा अस्तित्व होता? कदापि नहीं। पर जो रसायन जन्तु-जगत् में इतना बहुव्यापी है, वह इतना हानिकारक किस तरह से हो गया? किस लिए कोलेस्टेरॉल का बढ़ा स्तर हमारे लिए रोगोत्पादक सिद्ध होने लगा?

पिछले लेख में हम जान चुके हैं कि रक्त में जब बढ़े हुए-सामान्य-घटे हुए 'कोलेस्टेरॉल' की बात कर रहे होते हैं, तो हमारा वास्तविक मतलब बढ़ी हुई-सामान्य-घटी हुई 'अमुक लायपोप्रोटीन' होता है। ये लायपोप्रोटीन अनेक प्रकार की हैं: एचडीएल, एलडीएल, वीएलएडीएल, कायलोमायक्रॉन इत्यादि। इन सभी लायपोप्रोटीनों के शरीर में अलग-अलग काम हैं, ये अलग-अलग जैवरासायनिक कार्य किया करती हैं। (अब प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि इन कामों को किस तरह समझा जा सकता है?)

लायपोप्रोटीन शब्द को तनिक देखिए: वे प्रोटीन जो लायपो से भी निर्मित हैं। यानी वे प्रोटीन जिनमें लिपिड भी है। लिपिड कौन? कोलेस्टेरॉल व फ़ैट (वसा)। इस तरह से यह समझा जा सकता है कि कोलेस्टेरॉल एवं फ़ैट-रसायनों को धारण करने के कारण कुछ ख़ास क़िस्म की प्रोटीनों को लायपोप्रोटीन नाम दिया गया है। ये लायपोप्रोटीन जिस्म की कोलेस्टेरॉल-फ़ैट वाहिकाएँ हैं, उन्हें ढोकर शरीर में अलग-अलग जगह पहुँचाती हैं। यानी कायलोमायक्रॉन का काम भोजन की वसा व कोलेस्टेरॉल को अवशोषित करके शरीर के अन्य ऊतकों तक पहुँचाना है, तो एलडीएल का काम कोलेस्टेरॉल को यकृत से अन्य ऊतकों तक ले जाना।

अगर शरीर एक शहर है, तो अंग (और उन अंगों को बनाने वाले ऊतक) उस शरीर की कॉलोनियाँ। उन कॉलोनियों के अलग;अलग सड़क-रूटों पर अलग-अलग टैक्सियाँ दौड़ रही हैं। ये टैक्सियाँ लायपोप्रोटीन हैं। किसी रूट पर एचडीएल टैक्सी चलती है, तो किसी पर एलडीएल टैक्सी। किसी मार्ग पर यात्रा के लिए वीएलडीएल टैक्सी का इस्तेमाल करना होता है, तो किसी पर क़ायलोमायक्रॉन टैक्सी का। इन सभी टैक्सियों में चलने वाला ग्राहक कौन हैं? फ़ैट, कोलेस्टेरॉल व इनसे निर्मित रसायन।

लोगों का यह सोचना लाज़िमी है कि शरीर के भीतर इतने तामझाम की भला ज़रूरत ही क्या थी। कोलेस्टेरॉल क्या सीधे-सीधे ख़ून में अवशोषित होकर एक अंग से दूसरे अंग में नहीं जा सकता था? क्यों आवश्यक हुआ कि लायपोप्रोटीनों का सहारा लेना पड़ा? इसका उत्तर यह है कि तमाम फ़ैट और कोलेस्टेरॉल जल में घुल नहीं सकते। और जो जल में अघुलनशील है, उसके ट्रांसपोर्ट में शरीर के भीतर समस्या है।
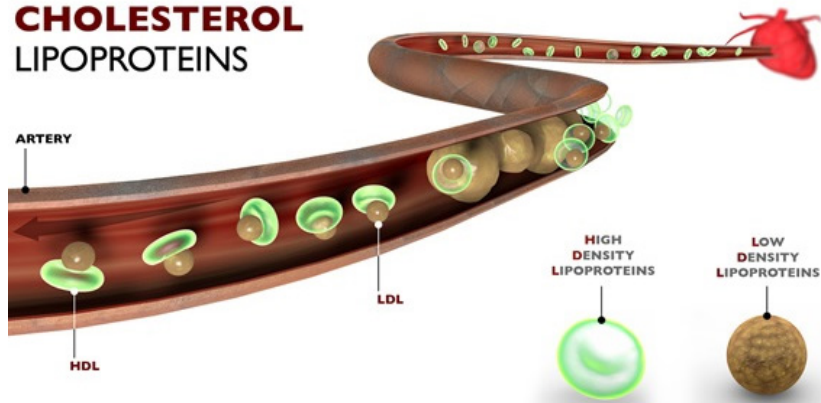
इसलिए शरीर को इन फ़ैट-कोलेस्टेरॉल-रसायनों को किसी ऐसे रसायन से जोड़कर ट्रांसपोर्ट करना पड़ता है, जो ख़ून में मौजूद पानी में घुल सके। यही वजह है कि लायपोप्रोटीनों का वजूद है।

अगली बार जब आप अपनी या किसी अन्य की लिपिड-प्रोफ़ाइल-रिपोर्ट देखें, तो सभी कॉलमों को अलग-अलग समझें। अगर एलडीएल बढ़ा हुआ है, तो इसका अर्थ यह समझें कि एक ख़ास क़िस्म की लायपोप्रोटीनों का स्तर ख़ून में ज़्यादा है। यानी जिस्म के किसी ख़ास रूट पर टैक्सियाँ ज़्यादा चल रही हैं, उस रास्ते पर कोलेस्टेरॉल व फ़ैट की आवाजाही अधिक है। अगर एचडीएल घटा हुआ है, तो किसी ख़ास मार्ग पर विशेष टैक्सियों का आवागमन कम हो रहा है। ख़ून की धमनियों के तमाम रोग कोलेस्टेरॉल ढोने वाले इन लायपोप्रोटीनों के गड़बड़ ट्रांसपोर्ट के कारण होते हैं : हृदय के, मस्तिष्क के, कई अन्य भी। किसी रुट पर टैक्सियाँ ज़रूरत से ज़्यादा चलेंगी अथवा कम, कुछ समस्या ज़रूर आएगी।

सड़क पर अचानक अनेक वाहनों का कोई लम्बा काफ़िला जाता दिखे, तो आप ध्यान से उसे देखने लगते हैं। बस आपकी लिपिड-

प्रोफ़ाइल की रिपोर्ट दरअसल अलग-अलग रूटों पर अलग-अलग टैक्सियों के काफ़िलों का ट्रैफ़िक बता रही है। सोचिए कि ढेर सारी एलडीएल-टैक्सियों में बैठकर ख़ूब सारे कोलेस्टेरॉल व फ़ैट रूपी लोग कहाँ जा रहे हैं? कहाँ उतरेंगे ये? इनकी भीड़ तो ज़रूरत से ज़्यादा है? क्या जी में है इनके? कहीं तो कुछ गड़बड़ है!

4.

अगर आपने डॉक्टर के कहने पर (या अपने-आप भी) कोलेस्टेरॉल-जाँच करायी है, तो तनिक उसे ध्यान से देखिए। ध्यान दीजिए उसके अंकित सभी रसायनों पर। बायीं ओर उनके नाम होंगे और दाहिनी ओर उनकी संख्याएँ। इन्हीं संख्याओं को देखकर यह तय होता है कि अमुक रसायन बढ़ा हुआ है अथवा नहीं।

जब भी कोलेस्टेरॉल बढ़ने की बात डॉक्टर आपसे करते हैं, तब उनका आशय लायपोप्रोटीनों से होता है-- यह बात आप इस लेख-शृंखला के पिछले अंकों में आप जान चुके हैं। लेकिन आम बोलचाल में डॉक्टर व मरीज़ लायपोप्रोटीन जैसे जटिल शब्द का इस्तेमाल नहीं करते, वे यही कहते-सुनते हैं कि आपके ख़ून में कोलेस्टेरॉल बढ़ गया है।

विज्ञान में पुरानी धारणा यह थी कि भोजन से व्यक्ति कोलेस्टेरॉल प्राप्त करता है (जबकि अब आधुनिक ज्ञान इससे विपरीत कहता है।) किसी व्यक्ति के शरीर में 75% कोलेस्टेरॉल यकृत व अन्य अंगों में बनता है, केवल 25% ही भोजन से प्राप्त होता है। ऐसे में किसी व्यक्ति का यह सोचना कि केवल आहार में बदलाव से कोलेस्टेरॉल नियन्त्रित हो जाएगा, सही नहीं है। केवल खानपान में परहेज़ से कोलेस्टेरॉल हमेशा कंट्रोल नहीं होगा। इसके लिए व्यक्ति को व्यायाम भी ठीक से करना होगा। लेकिन इसके बाद भी कोलेस्टेरॉल-स्तर केवल भोजन और खानपान से नियन्त्रित नहीं किया जा सकता क्योंकि अंगों के भीतर बनने

वाले कोलेस्टेरॉल में बढ़ी भूमिका जीनों की है।

अच्छे या बुरे जीनों को हम माँ-बाप से पाते हैं। हमारी इस जेनेटिक विरासत पर हमारा बस नहीं। बुरे जीनों के होने से बच्चों में भी कोलेस्टेरॉल ख़ून में बढ़ा पाया जा सकता है। इन बुरे जीनों के कारण बच्चों में बढ़े हुए कोलेस्टेरॉल-स्तर को फैमिलियल हायपर-कोलेस्टेरोलीमिया कहा जाता है। यह एक रोगों का समूह है, इसमें अनेक जीनों के आधार पर अनेक रोग शामिल हैं।

यह कभी न सोचिए कि बच्चों में कोलेस्टेरॉल बढ़ नहीं सकता। यह कदापि सत्य नहीं कि बच्चे बढ़े कोलेस्टेरॉल से प्रभावित नहीं हो सकते। फैमिलियल हायपरकोलेस्टेरोलीमिया से पीड़ित बच्चों में हृदय-रोग भी हो सकते हैं; अन्य स्थानों की धमनियों में भी कोलेस्टेरॉल-जमावड़े के कारण रोग पैदा हो सकते हैं।

तो क्या सभी बच्चों को अपना कोलेस्टेरॉल नपवाना चाहिए? अमेरिकन एकेडमी ऑफ़ पीडियाट्रिक्स की गाइडलाइन कहती हैं कि 9-

11 और 17-21 की उम्र के बीच यह ख़ून-जाँच सभी बच्चों अवश्य करानी चाहिए। साथ ही उन छोटे बच्चों में भी यह जाँच करानी चाहिए, 1. जिनके माता-पिता-बाबा-दादी-नानी-नाना को हार्ट अटैक या अथीरो-स्लेरोसिस-सम्बन्धित अन्य रोग रहे हैं, 2. जिनके माता-पिता-बाबा-दादी-नानी-नाना का कोलेस्टेरॉल-स्तर 240 मिग्रा/डेसीलीटर से अधिक है, 3. वे बच्चे जिनमें डायबिटीज़, ब्लडप्रेशर या मोटापा हैं अथवा जो बच्चे धूमपान करते हैं।

बच्चे (एवं उनके माँ-बाप) बुरे कोलेस्टेरॉल-जीनों को जान लेंगे तो क्या होगा? वे अपने भोजन में सार्थक बदलाव करेंगे और व्यायाम नित्य करेंगे। जीन ज़रूर बदलना उनके हाथ में नहीं है, लेकिन जितना वश में है उतना अवश्य किया जाएगा। दवाएँ तो फिर हैं ही।

कोलेस्टेरॉल और जीवन पर बातें होती रहेंगी आगे।

5.

आपके हाथ में अपनी लिपिड-प्रोफ़ाइल-रिपोर्ट है, जिसमें अनेक आँकड़े ऊपर-नीच जान पड़ रहे हैं। इस रिपोर्ट पर आगे बात करने से पहले हमें कुछ शब्दों पर बात करनी ज़रूरी है। यह जानना आवश्यक है कि लिपिड क्या है और फ़ैट किसे कहते हैं। और क्या लिपिड और फ़ैट एक-ही रसायन के दो नाम हैं। फिर इनका कोलेस्टेरॉल से क्या रिश्ता है?

हिन्दी के शब्दों का प्रयोग नहीं करूँगा, अन्यथा यह भ्रम और बढ़ जाएगा। आप यों समझें कि लिपिड रसायनों का एक समूह है। एक बड़ा समूह जो पानी में नहीं घुलता। इस समूह में अनेक प्रकार के सदस्य हैं। ट्रायग्लिसराइड हैं, फॉस्फोलिपिड हैं, स्टेरॉल भी हैं। इन्हीं ट्रायग्लिसराइड को आप फ़ैट कह सकते हैं। फॉस्फोलिपिड का काम शरीर की कोशिकाओं की सेल-मेम्ब्रेन का निर्माण है और स्टेरॉल भी इसमें योगदान देते हैं। इन्हीं स्टेरॉलों में एक स्टेरॉल कोलेस्टेरॉल है, जिसपर हमारी यह शृंखला चल रही है।

स्टेरॉल अनेक प्रकार के हैं, कई पौधों में भी मिलते हैं। लेकिन कोलेस्टेरॉल अमूमन जानवरों के शरीरों में ही पाया जाता है। तो इस तरह से कोलेस्टेरॉल भी लिपिड है, ट्रायग्लिसराइड (फ़ैट) भी लिपिड है और फॉस्फोलिपिड तो लिपिड हैं ही। 'कोल' और 'स्टेरियोस' यूनानी शब्दों से मिलकर बना यह शब्द अपने नाम से भी दो जैविक इशारे दे रहा है।

कोल यानी पित्त। स्टेरियोस अर्थात् कड़ापन। (कोलेस्टेरॉल ठोस होता है और इसके कारण धमनियों की दीवारें कड़ी और सँकरी हो जाती हैं। पित्त का निर्माण बिना इसके हो नहीं सकता। ऐसे में इसका नाम एकदम सटीक ही है।)

अपनी लिपिड-प्रोफ़ाइल को समझने से पहले अपने भोजन को समझिए। आप दाल खाते हैं, सब्ज़ी भी। रोटियाँ-चावल और दूध-दही का भी सेवन करते हैं। मांस भी खाया जाता है, अण्डे-मछली भी। इसके अलावा अनेक जंक भोज्य, सॉफ़्ट ड्रिंक इत्यादि भी जब-तब उदरस्थ कर लिये जाते हैं। इन सभी को आप चाहे जिन नामों से समझें, शरीर के लिए ये भिन्न-भिन्न रसायनों का जमावड़ा हैं। आपकी दाल आपके लिए तड़का लगी अरहर होगी, शरीर के लिए वह एक प्रोटीन-पदार्थ है, जिसमें थोड़ा नमक और घी आपने मिला लिया है। यह दाल आपके भीतर जाएगी : आमाशय और छोटी आँत मिलकर इसके प्रोटीन को पचाएँगे और पित्त की सहायता से छोटी आँत ही इसके घी को पचाने में योगदान देगी।

भोजन में लिया गया सभी जन्तु-भोज्य कोलेस्टेरॉल व ट्राइग्लिसराइड (फ़ैट) युक्त होता है। चाहे वह मांस हो अथवा डेयरी-उत्पाद, उसमें कोलेस्टेरॉल की मौजूदगी है ही क्योंकि ये सभी जन्तुओं के शरीर हैं या उन्हीं से निकले हैं। अब जब आँतों से ये ख़ून में पहुँचते हैं, तो यों ही घुल नहीं सकते। ख़ून में पानी की प्रचुरता है और लिपिड जल में घुलते नहीं। इसलिए इन्हें घोलकर शरीर के तमाम हिस्सों में पहुँचाने के लिए ख़ास व्यवस्था की गयी है।

यों समझें कि कोलेस्टेरॉल इंसानों का एक प्रकार है और ट्राइग्लिसराइड दूसरा। इन्हें आँतों से ख़ून में 'पिक' करके शरीर के अन्य

हिस्सों में 'ड्रॉप' करना है। इस पिक-एण्ड-ड्रॉप-सर्विस के लिए एक ख़ास क़िस्म की लायपोप्रोटीन-टैक्सियों की व्यवस्था की गयी है। इन टैक्सियों का नाम कायलोमायक्रॉन है। इनमें ख़ूब सारा ट्रायग्लिसराइड है और बहुत थोड़ा सा कोलेस्टेरॉल। लेकिन जैसे-जैसे ये शरीर-भर में ट्रायग्लिसराइड बाँटती जाती हैं, वैसे-वैसे इनमें यह अनुपात बदलता जाता है। यह ट्राइग्लिसराइड फैट-कोशिकाओं में ले लिया जाता है और रक्त-वाहिनियों में भी। इस पिक-एण्ड-ड्रॉप के बाद कायलोमायक्रॉन का नाम हो जाता है कायलोमायक्रॉन रेमनेन्ट्स (अर्थात् कायलोमायक्रॉन के अवशेष)।

आम तौर पर आपकी लिपिड-प्रोफ़ाइल-रिपोर्ट में कायलोमायक्रॉन-स्तर का ज़िक्र नहीं होता। ख़ास रोग-परिस्थितियों में डॉक्टर इन्हें ऑर्डर करते हैं। मानव-यकृत से भी दो अलग लायपोप्रोटीन-टैक्सियाँ ट्राइग्लिसराइड और कोलेस्टेरॉल को लेकर शरीर-भर के लिए निकलती हैं। इनके नाम हैं वीएलडीएल एवं एलडीएल। वीएलडीएल में जहाँ ट्राइग्लिसराइड की (कोलेस्टेरॉल की तुलना में) प्रचुरता रहती है, तो एलडीएल में कोलेस्टेरॉल (ट्राइग्लिसराइड की तुलना में) अधिक पाया जाता है।

सभी कोलेस्टेरॉल-वाहक टैक्सियों में आपने कायलोमायक्रॉन एवं आइएलडीएल के नाम कदाचित् न सुने हों। जबकि एलडीएल, वीएलडीएल एवं ट्रायग्लिसराइड के नाम सुने और लिपिड-प्रोफ़ाइल रिपोर्ट में देखे भी होंगे। इसके अलावा एक अन्य लायपोप्रोटीन एचडीएल भी आपके संज्ञान में आया होगा। एलडीएल, वीएलडीएल और ट्रायग्लिसराइड का अनेक मानव-रोगों से सम्बन्ध सिद्ध है। वहीं एचडीएल अनेक रोगों से शरीर की रक्षा करता पाया जाता है। आगे हम

इन लाइपोप्रोटीनों पर और चर्चा जारी रखेंगे।

जब भी लिपिड-प्रोफ़ाइल पर आपकी नज़र पड़े और एलडीएल बढ़ा हो, तो उन लायपोप्रोटीन-टैक्सियों को याद करिए जो रक्तमार्गों पर कोलेस्टेरॉल की प्रचुर मात्रा लेकर गश्त लगा रही हैं। ये टैक्सियाँ यकृत से निकली हैं, इनमें ढेर सारे कोलेस्टेरॉल-अणु और कुछ ट्रायग्लिसराइड सवार हैं। जब कभी रिपोर्ट में वीएलएडीएल बढ़ा मिले, तो उन लायपोप्रोटीन-टैक्सियों को कल्पित कीजिए, जिनकी सवारी मुख्य रूप से ट्राइग्लिसराइड है। ये भी आपके यकृत से निकली हैं और सवारियों को लेकर रक्तमार्गों पर टहल रही हैं।

ख़ून में बढ़े एलडीएल और वीएलडीएल-स्तर क्या हैं? यकृत से ख़ूब सारा कोलेस्टेरॉल व ट्राइग्लिसराइड लेकर निकली टैक्सियाँ हैं, जिनके कारण शरीर-रूपी शहर की व्यवस्था अस्तव्यस्त होनी ही है। कहाँ उतरेंगी ये सवारियाँ? कहाँ से इतनी सारी आ गयीं? क्या होगा इनके यों बढ़ जाने से?

6.

जानकारियों से स्वस्थ धारणाओं का निर्माण जितना आवश्यक है, उतना ही ज़रूरी है भ्रान्तियों का भंजन। ऐसी ही कुछ ग़लतफ़हमियाँ हृदयरोगों और हमारी इस शृंखला के अधिनायक-खलनायक कोलेस्टेरॉल के विषय में भी हैं।

अनेक लोग सोचते हैं कि हृदय-रोगों में आनुवंशिकी ही भूमिका निभाती है। यह अर्ध-अपूर्ण सत्य है। सच यह है कि केवल आनुवंशिकी से ढेर सारे हृदय-रोग घटित नहीं होते, उनके लिए प्रतिकूल आहार, नशा, तनाव, अनिद्रा, आलस्य एवं प्रदूषण जैसे अन्य कारक भी भूमिका निभाते हैं। दूसरी भ्रान्ति यह प्रचलित है कि मोटापे का सीधा सम्बन्ध बढ़े हुए कोलेस्टेरॉल-स्तर से है। यह सच है कि वज़न बढ़ने से कोलेस्टेरॉल का स्तर बढ़ने की आशंका अधिक होती है, किन्तु यह भ्रम कदापि नहीं पालना चाहिए कि पतले लोगों का कोलेस्टेरॉल-स्तर सदा सामान्य होगा। पतले व मरियल लोगों का भी लिपिड-प्रोफ़ाइल अनियमित हो सकता है और उन्हें भी इससे सम्बन्धित हृदय-रोग हो सकते हैं।

तीसरा भ्रम कोलेस्टेरॉल व हृदयरोगों की लैंगिकी को लेकर है। अनेक लोग सोचते हैं कि कोलेस्टेरॉल का बढ़ना एवं/अथवा हृदय-रोग केवल पुरुषों में ही देखे जा सकते हैं। यह सच है कि रजोनिवृत्ति से पहले महिलाओं को उनका हॉर्मोन ईस्ट्रोजेन रक्षा प्रदान करता है, लेकिन इसके बाद कोलेस्टेरॉल-स्तर की वृद्धि के साथ हृदयरोगों का ख़तरा उनमें भी

बढ़ता है।

एक ग़लत धारणा यह भी चलती है कि समुचित भोजन और व्यायाम करने से कभी कोलेस्टेरॉल (व हृदयरोगों) की समस्या होगी ही नहीं। समस्या के अतिशय कम होने और न होने में अन्तर है और वह रहेगा। केवल सही भोजन और कसरत से न तो सेहत के हर पैरामीटर हो हमेशा सही किया जा सकता है और न किया जा सकेगा। ऐसे में सही भोजन व व्यायाम किया तो जाए,लेकिन उसके सहारे आँख मूँद कर न रहा जाए।

इसके विपरीत जीवन जीना भी नादानी है। कोलेस्टेरॉल को दुरुस्त करने की दवा खा लेंगे, जीवनशैली ज़रा न बदलेंगे। न भोजन बदलेंगे, न व्यायाम करेंगे। रोग से केवल गोलीबाज़ी करते हुए लड़ेंगे। जीवन में अनुशासन कदापि न लाएँगे, चाहे डॉक्टरों को एक-के-बाद-एक बदलना पड़े!

अनेक विशेषज्ञ-पैनल बीस वर्ष से ऊपर की उम्र में हर चार से छह वर्षों में लिपिड-प्रोफ़ाइल की जाँच कराने की सलाह देते हैं। विशेष परिस्थितियों में डॉक्टर इससे इतर राय रखने केलिए स्वतन्त्र हैं। नौ से बारह घण्टे खाली पेट रहकर ख़ून की यह जाँच की जाती है और इसमें अनेक लायपोप्रोटीनों की मात्रा जाँची जाती है, जिसके बाद रोगी को उचित परामर्श दिया जाता है।

7.

लिपिड-प्रोफ़ाइल-रिपोर्ट में मौजूद तीन शत्रुओं के बारे में आपने सम्भवतः सुना हो। इन तीन में दो तो हानिकारक क़िस्म के लायपोप्रोटीन एलडीएल एवं वीएलडीएल हैं। तीसरा शत्रु है ट्रायग्लिसराइड जिसे सामान्य तौर पर फ़ैट समझा जा सकता है। अलग-अलग ढेरों रिपोर्टों में आपको इनमें से एक, दो या तीनों का स्तर बढ़ा हुआ मिल सकता है। इन तीन हानिप्रद रसायनों के अलावा एक चौथा अन्य लायपोप्रोटीन भी आपको रिपोर्ट में घटा मिल सकता है : यह एचडीएल है।

एलडीएल को आम भाषा में बुरा या बैड कोलेस्टेरॉल कहने का चलन है। एलडीएल लायपोप्रोटीन यकृत से बनता है और कोलेस्टेरॉल (अधिक) व ट्राइग्लिसराइड (कम) लेकर शरीर-भर की रक्त वाहिनियों से होता हुआ ऊतकों में इन्हें पहुँचाता है (यह हम जान चुके हैं)। इसी तरह वीएलडीएल का निर्माण भी यकृत में ही होता है और यह ट्राइग्लिसराइड में प्रचुर होता है (यह भी हम जान चुके हैं)। जब किसी व्यक्ति के ख़ून में इन दोनों लायपोप्रोटीनों का स्तर बढ़ जाता है, तो ये रक्तवाहिनियों में जमा होने लगते हैं। नतीजन वहाँ रक्तवाहिनी की भीतरी दीवार के नीचे हो रहे इस जमावड़े से ख़ून का बहाव सँकरा होने लगता है। इस लायपोप्रोटीन-जमावड़े को मेडिकल-भाषा में 'प्लाक' कहा जाता है। जगह-जगह एलडीएल व वीएलडीएल के बढ़े स्तर के कारण शरीर की

धमनियों में बनने वाले ये प्लाक ही हृदयाघात, एंजायना व स्ट्रोक व अनेक बार गैंग्रीन जैसे रोगों की उत्पत्ति में बड़ी भूमिका निभाते हैं। प्लाकों के इन जमावड़ों से धमनियों की दीवारें कड़ी और सँकरी होती ही हैं: इसी अवस्था को एथिरोस्क्लेरोसिस कहा गया है। यह एथिरोस्क्लेरोसिस ही ऊपर बताये गये रोगों के जन्म में सहायक सिद्ध होती है। ट्राइग्लिसराइड भी इन दो दुश्मनों की तरह हृदय व मस्तिष्क के ऊपर बताये गये रोगों में भूमिका निभाते हैं। साथ ही इन लिपिडों के ख़ून में बहुत बढ़ने से मनुष्य के अग्न्याशय में पैन्क्रियटाइटिस रोग का ख़तरा बढ़ जाता है।

ख़ून में एलडीएल, वीएलडीएल एवं ट्रायग्लिसराइड के अत्यधिक होने से विकसित हो रही एथिरोस्क्लेरोसिस को केवल लिपिड का असामान्य जमावड़ा समझना अधूरी बात होगी। दरअसल यहाँ इस एकत्रीकरण के बाद इन्फ्लेमेशन की एक स्थिति पैदा होती है। यानी लिपिड का जमा होना और फिर वहाँ इंफ्लेमटरी कोशिकाओं के आने से प्लाक के भीतर अनेक बदलाव होते हैं। इन्हीं बदलावों के आधार पर प्लाक को डॉक्टर स्टेबल प्लाक या अनस्टेबल प्लाक के नाम से पुकारते हैं। स्टेबल प्लाक धमनी को केवल कड़ा करके ख़ून के बहाव को सँकरा कर देता है, किन्तु अनस्टेबल प्लाक लिपिड की अत्यधिक मौजूदगी के कारण धमनी के भीतर-ही-भीतर फट सकता है। उसके इस तरह फट जाने से उस स्थान पर ख़ून में मौजूद प्लेटलेट व अन्य ख़ून जमाने वाले प्रोटीन एक थक्का बनाकर रक्तप्रवाह पूरी तरह अवरुद्ध कर देते हैं। यानी

जहाँ स्टेबल प्लाक में रक्तप्रवाह केवल सँकरा होता है, वहीं अनस्टेबल प्लाक के फटने से यह पूरी तरह रुक जाता है। ज़ाहिर है अनस्टेबल प्लाक स्टेबल प्लाक की तुलना में कहीं अधिक खतरनाक हैं।

इस हानिकारक लिपिड-त्रयी की बात करते समय हम एचडीएल की बात बिसारकर यह लेख समाप्त नहीं कर सकते। एचडीएल को आम भाषा में अच्छा या गुड कोलेस्टेरॉल भी कहा जाता है। यह लायपोप्रोटीन शरीर-भर से कोलेस्टेरॉल व ट्राइग्लिसराइड जमा करके वापस यकृत में पहुँचाता है, जहाँ से इन लिपिडों को पित्त के रास्ते शरीर से निकाल दिया जाता है। इस तरह से एलडीएल व वीएलडीएल के हानिकारक कार्यों का एचडीएल विरोध करता है।

बढ़े हुए एलडीएल, वीएलडीएल व ट्रायग्लिसराइड से हार्ट-स्टैक व स्ट्रोक जैसे रोगों का ख़तरा बढ़ जाता है। एचडीएल इन रोगों से शरीर की रक्षा करता है। ऐसे में लिपिड-प्रोफ़ाइल को इन चारों रसायनों के लिए देखिए। क्या आपका एलडीएल बढ़ा है? क्या वीएलडीएल एवं ट्रायग्लिसराइड बढ़े हैं? अथवा तीनों बढ़े हैं? और क्या एचडीएल कम है?

आगे इन्हें सामान्य रखने के तरीकों पर बात होगी। साथ ही यह भी चर्चा कि कोलेस्टेरॉल की रोगभूमिका को लेकर इतना विवाद क्यों है।

४.

सफ़ेद भोजन ख़ूब करेंगे, तो कैसे लड़ेंगे ट्रायग्लिसराइड से!
गोरेपन के प्रति झुकाव मानव-स्वभाव में है। इसी तरह से उसका रुझान रिफाइनमेंट यानी परिष्करण की ओर भी रहता है। जीवन में अनेक ऐसे व्यक्ति-विचार-वस्तुएँ हमें मिलती हैं, जहाँ हम श्वेतिमा और परिष्करण की ओर खिंचते चले जाते हैं। बिना यह देखे कि उसमें जीवन-मूल्य कितना निहित है, हम उसकी नासमझ इच्छा मन में पाल बैठते हैं।

यह लेखन समाज के अन्य पहलुओं पर केन्द्रित नहीं है; इसका केन्द्रबिन्दु कोलेस्टेरॉल नामक एक रसायन है, जिसका सम्बन्ध तमाम मानव-रोगों से पाया गया है। विज्ञान यह शोधों द्वारा सिद्ध कर चुका है कि शरीर में मौजूद कोलेस्टेरॉल की बड़ी मात्रा भीतर ही निर्मित की जाती है और भोजन से इसे प्राप्त नहीं किया जाता। ऐसे में अनेक लोगों के लिए यह प्रश्न आवश्यक हो जाता है कि क्या कोलेस्टेरॉल-युक्त भोजन को घटाने के लिए मनुष्य को अतिरिक्त प्रयास करने चाहिए अथवा नहीं।

कोलेस्टेरॉल जानवर के शरीर में बनता है, उसी में पाया जाता है। जो जानवर को अथवा जानवर का कोई भी उत्पाद खाएँगे उन्हें वह मिलेगा। इस तरह जो भोजन-उत्पाद जन्तुओं से प्राप्त होते हैं, कोलेस्टेरॉल के स्रोत हैं। इनमें चिकन-मटन-अन्य मांस भी शामिल हैं, अण्डा व दूध भी। जो वीगन आहार पर हैं, और किसी भी तरह का कोई भी पशु-उत्पाद नहीं लेते हैं, उन्हें भोजन से कोलेस्टेरॉल लगभग नहीं प्राप्त होता है।

लेकिन क्या कोलेस्टेरॉल को एकदम त्याग कर यह माना जा सकता है कि हृदयाघात बिलकुल नहीं होगा? यह तो फिर भी दूर की बात हुई: क्या यह माना जा सकता है कि कोलेस्टेरॉल भोजन में न लेने से ख़ून में कोलेस्टेरॉल की मात्रा एकदम दुरस्त और सामान्य रहेगी? न, ऐसा सौ फीसदी सोच कर नहीं रहा जा सकता। दरअसल कोलेस्टेरॉल का सम्बन्ध हार्ट-अटैक, स्ट्रोक व अन्य रोगों से वैसा नहीं है, जैसा टीबी से जीवाणु मायकोबैक्टीरियम ट्यूबरकुलोसिस का है। टीबी इस जीवाणु से होती है, इसलिए इसे इसका कारण माना जाता है। किन्तु हार्ट-अटैक कोलेस्टेरॉल के कारण नहीं होता, दरअसल हार्ट-अटैक और स्ट्रोक जैसी बीमारियों का एक कारण है ही नहीं।

अगर आपकी रिपोर्ट में एलडीएल या वीएलडीएल बढ़ा है और इस बाबत आप डॉक्टर से पूछेंगे, तो वह इन बढ़ी जाँचों को कारण नहीं, कारक कहेंगे। बढ़ा एलडीएल हार्ट-अटैक का कारण नहीं, कारक है। कारण कहते हैं कॉज़ेटिव फ़ैक्टर को, कारक नाम है रिस्क फ़ैक्टर का। हर बीमारी को कॉज़ेटिव फ़ैक्टर से नहीं समझा जा सकता। जिस तरह लोहे की कमी लोहे की कमी वाले अनीमिया का कॉज़ है और मायकोबैक्टीरियम ट्यूबरकुलोसिस टीबी का कॉज़ है, उस तरह से एलडीएल को आप हार्ट-अटैक का कॉज़ नहीं कह सकते। हार्ट-अटैक का कॉज़ धूम्रपान भी नहीं है। हार्ट-अटैक का कॉज़ तनाव भी नहीं है। हार्ट-अटैक का कॉज़ बुरी आनुवंशिकी भी नहीं है। ये सभी हार्ट-अटैक के रिस्क फ़ैक्टर हैं, सभी के मिलकर काम करने से हार्ट-अटैक जैसी दुर्घटना घटती है।

एलडीएल का बढ़ा हुआ स्तर अगर हार्ट-अटैक रिस्क फ़ैक्टर है, तो क्या कोई प्रोटेक्टिव फ़ैक्टर भी है? यानी ऐसा रसायन जो बुरे एलडीएल,

वीएलडीएल और ट्रायग्लिसराइड के बढ़े हुए स्तरों से हमारी रक्षा करे? बिलकुल है। एचडीएल ऐसा ही एक रक्षक-फ़ैक्टर है, जिसके समुचित होने से हृदय समेत अनेक अंगों की एथिरोस्केलरोसिस- सम्बन्धित रोगों से रक्षा होती है।

किसी व्यक्ति का एलडीएल-स्तर कितना होगा, यह उसके जीन भी निर्धारित करते हैं। लेकिन जीन सबकुछ नहीं होते। भोजन क्या किया जा रहा है, इसका भी एलडीएल बढ़ाने में योगदान होता है। जानवरों से प्राप्त हो रहे भोज्य-उत्पादों में सैचुरेटेड फ़ैट व ट्रांस-फ़ैट ख़ूब होते हैं। ऐसे में समझदारी यह है कि इनका सेवन कम और देख-समझकर किया जाए। यद्यपि इसके लिए गाइडलाइन उपलब्ध हैं, लेकिन मानकों से सहारे समूचे मानव-समाज को नहीं हाँका जा सकता। भिन्न है, उसका शरीर अलग है। सो कौन कितना और किस तरह का भोजन करे, इसके लिए उसे डॉक्टरों व न्यूट्रिशनिस्ट से व्यक्तिगत स्तर पर राय लेनी चाहिए।

पशु-उत्पाद-प्रचुर भोजन से कोलेस्टेरॉल बढ़ने में योगदान रहेगा --- यह अगर सच है ; तो यह भी सत्य है कि अत्यधिक वज़न, कसरत न करना और धूमपान भी इसमें योगदान देंगे। शराब का ख़ूब सेवन भी इसमें सहयोगी बनेगा। जो लोग रिफाइंड भोजन अधिक खाएँगे, उनमें यह ख़तरा और अधिक बढ़ जाएगा। जितने रिस्क फ़ैक्टर अधिक, उतना एलडीएल-वीएलडीएल एवं ट्रायग्लिसराइड का स्तर बढ़ने का ख़तरा अधिक। जितना अधिक इनका स्तर,उतना हार्ट-अटैक व स्ट्रोक जैसे रोगों की आशंका अधिक।

जब हम भोजन करते हैं, तो शरीर अतिरिक्त ऊर्जा-कैलोरियों को ट्रायग्लिसराइड में बदल कर स्टोर कर लेता है। जितनी कैलोरी खर्चनी है, खर्चो। जो बचे, उसे ट्रायग्लिसराइड में बदलो। अब आपके सामने कोई

श्रीमान् हैं, जिनका ट्रायग्लिसराइड बढ़ा है। इसका अर्थ बहुधा यह है कि वे आवश्यकता से अधिक कैलोरी ले रहे हैं। उनका भोजन ज़रूरत से ज़्यादा है, यह बात उनका शरीर जानता है। नतीजन वह एक्स्ट्रा-कैलोरियों को ट्रायग्लिसराइड में बदल कर भाण्डारित करने में लगा है।

बढ़े हुए ट्रायग्लिसराइड का रिश्ता डयबिटीज़ से भी हो सकता है, हायपोथायरॉइडिज़्म से भी। मोटापे से तो ख़ैर इसका सम्बन्ध है ही। इसके अलावा अनेक दवाएँ भी ऐसी हैं, जिनके सेवन से ट्रायग्लिसराइड ख़ून में बढ़ सकते हैं। लेकिन सबसे आम कारण आलू-चावल-मैदा-रोटी-चीनी वाला वह सफ़ेद स्टार्चयुक्त भोजन है, जिसके सेवन के समय लोग ज़रा ध्यान नहीं देते। नतीजन ढेरों भारतीयों की लिपिड-प्रोफ़ाइलों में चाहे एलडीएल-वीएलडीएल बढ़े मिलें-न मिलें, ट्रायग्लिसराइड ख़ूब बढ़े मिलते हैं।

9.

ज़माना पोस्ट-ट्रुथ या उत्तरसत्य का चल रहा है। सभी स्थापत्यों पर प्रश्नांकन किया जा रहा है। स्थापत्यों पर प्रश्न उठाना ग़लत नहीं है, न था। लेकिन सभी स्थापित तथ्य सन्देहास्पद नहीं होते। वैक्सीनों से लेकर कोलेस्टेरॉल तक सभी के लाभों और हानियों को यह कहकर खारिज नहीं किया जा सकता कि डॉक्टर और वैज्ञानिक अपूर्ण-अधूरे शोधों के साथ असत्य प्रस्तुत करते और परोसते हैं।

हृदयरोगों के बाबत आप किसी अन्य रिस्क-फैक्टर पर इतना विवाद न पाएँगे। धूमपान की हानियों के विरोध में कोई आपसे बहस नहीं करेगा, तनाव का योगदान भी मान लेगा। डायबिटीज़, ब्लडप्रेशर और व्यायामहीनता का हृदय-रोगों से सम्बन्ध है, यह भी ढेरों लोग आसानी से स्वीकार कर लेंगे। लेकिन कोलेस्टेरॉल? कोलेस्टेरॉल पर-- हो सकता है-- कई बहस करने लग जाएँ।

कोलेस्टेरॉल-वादविवाद से पहले अन्य रिस्क-फ़ैक्टरों पर भी अपने-अपने समय में सन्देहपूर्ण प्रश्न उठाये जाते रहे हैं। रॉनल्ड ए. फिशर जैसे गणितज्ञ-वैज्ञानिक मानते ही न थे कि सिगरेट का धुआँ हानिकारक होता

है। फिर ब्लडप्रेशर को लेकर ढेरों साल विवाद चला। सँकरी धमनियों में ख़ून को आगे ठेलने के लिए प्रेशर तो अधिक होना चाहिए न! तो बढ़ा बीपी बुरा कैसे जो गया! कुछ दिलचस्प कथ्य पढ़ने लायक हैं, जिन्हें विद्वानों ने अपने-अपने समय पर कहा है:

"Get it out of your heads, if possible, that high pressure is...the feature to treat."

(अपने दिमाग से निकाल दीजिए कि बढ़े ब्लडप्रेशर का इलाज करना चाहिए।)

– William Osler,

1912 address to Glasgow Southern Medical Society.

"Hypertension may be an important compensatory mechanism which should not be tampered with, even were it certain that we could control it."

(हाइपरटेंशन एक क्षतिपूर्ति-प्रणाली है, (कर सकने के बावजूद) इसके साथ छेड़छाड़ नहीं करनी चाहिए।)

– Dr. Paul Dudley White, 1937.

"The greatest danger to a man with high blood pressure lies in its discovery, because then some fool is certain to try and reduce it."

(बढ़े हुए ब्लडप्रेशर की खोज मानव के लिए ख़तरा है, क्योंकि अब कोई मूर्ख इसे घटाने की चेष्टा करेगा।)

– JH Hay, British Medical Journal 1931.

कहने का तात्पर्य यह है कि विज्ञान और विवाद का साथ पुराना है। विज्ञान किसी सत्य को अन्तिम मानता नहीं। ऐसे में जब उसके शोधक अनन्तिम भाव से रिसर्च करते हैं, तब हर विषय में नयी-नयी जानकारियों का उभरना स्वाभाविक ही है। कोलेस्टेरॉल क्या है, यह जानकारी हमारे लिए अपेक्षाकृत नयी है। हम डायबिटीज़ को आदिकाल से जानते रहे हैं, ब्लडप्रेशर भी अठारहवीं सदी से नापा जा रहा है। लेकिन कोलेस्टेरॉल की कहानी? इससे सम्बन्धित सब-कुछ महज़ सौ साल पुराना ही तो है!

कोलेस्टेरॉल को जानने की कहानी शुरू होती है निकोलाई अनिचकोव नाम वैज्ञानिक के साथ। लगभग सौ साल पहले उन्होंने कुछ खरगोशों को सूरजमुखी के तेल में मिलाकर कोलेस्टेरॉल खिलाया और अन्य खरगोशों को केवल सूरजमुखी का तेल। कोलेस्टेरॉल खाने वाले खरगोशों की धमनियों में एथिरोस्क्लेरोसिस हो गयी, अन्य को नहीं हुई। लेकिन तब इस शोध को बहुत तवज्जो नहीं मिली, बहुत बाद में ही इसका महत्त्व हमें पता चला। अगर इस समय के लोगों ने इस रिसर्च पर पर्याप्त ध्यान दिया होता, तो अनिचकोव को नोबेल पुरस्कार मिला होता। (पर ऐसा हुआ नहीं!)

अनेक अन्य वैज्ञानिकों ने कुत्तों-बिल्लियों को लेकर अनिचकोव के प्रयोग दोहराने की कोशिश की। कामयाबी नहीं मिली। कारण कि खरगोश शुद्ध शाकाहारी हैं, जबकि बिल्ली-कुत्ते मांसाहारी। मांसाहारी शरीर शाकाहारी शरीरों की तुलना में कोलेस्टेरॉल को अलग तरह से बरतते हैं। फिर मामला अगले तीस-चालीस साल ठण्डा पड़ा रहा है, जब तक कि जॉन गोफमैन ने यह नहीं बताया कि कोलेस्टेरॉल के कई 'प्रकार' होते हैं। यह लायपोप्रोटीन-रिसर्च की शुरुआत थी। आज हम जानते ही हैं कि कोलेस्टेरॉल लायपोप्रोटीनों में ढोया जाता है। सभी

लायपोप्रोटीन बुरे नहीं होते: अगर बुरा एलडीएल है, तो अच्छा एचडीएल भी होता है। शुरू हुआ जनसंख्या में कोलेस्टेरॉल के प्रभाव पर शोध का दौर। एपिडिमियोलॉजिकल रिसर्च आरम्भ हुए। नतीजों में कोलेस्टेरॉल के साथ हृदयरोगों के बड़े आँकड़े सामने आने लगे।

लेकिन इतना कहाँ पर्याप्त था? अब दौर चला डायट-शोधों का। यानी भोजन में अलग-अलग जनसमूह बनाकर किसी को कम और किसी को अधिक कोलेस्टेरॉल वाला भोजन कराकर शारीरिक प्रभावों को पढ़ना। इन शोधों में अधिकांश ने पाया कि कोलेस्टेरॉल को भोजन में घटाने से कार्डियोवैस्क्युलर रोग कम होते हैं। फिर सन् सत्तर के दशक से कोलेस्टेरॉल घटाने वाली दवाओं पर काम चलने लगा। अनेक रसायन बनाये गये। फिर आगे आधुनिक स्टैटिन-दवाएँ भी निर्मित हुईं। यह पाया गया कि बढे हुए कोलेस्टेरॉल को घटाने से कार्डियोवैस्क्युलर रिस्क को घटाने में मदद मिलती है।

इस पूरे समय सभी शोध एक मत से एक ही बात कहते रहे हों, ऐसा नहीं था। बहुसंख्य का कोलेस्टेरॉल को हृदयरोगों के लिए योगदायी मानना तो था, कुछ के नतीजे तटस्थ या प्रतिकूल भी थे। पश्चिमी मीडिया ने इन्हीं विरल शोधों आधार बनाकर यह प्रचारित करना शुरू किया कि न तो भोजन में तरह-तरह के प्रतिबन्ध लगाकर कोलेस्टेरॉल घटाया जा सकता है और न उसे दवाओं से घटाना चाहिए, अन्यथा हानियाँ होंगी। इस बाबत द एटलांटिक का 'द कोलेस्टेरॉल मिथ' बहुप्रचारित रहा।

आज-तक पश्चिम में अनेक मंचों पर लोग कोलेस्टेरॉल को लेकर मतभेद प्रदर्शित करते मिल जाएँगे। यद्यपि विज्ञानियों-चिकित्सक-विशेषज्ञों की मुख्यधारा इसको लेकर एकमत ही है। बढ़े हुए कोलेस्टेरॉल का एथिरोस्क्लिरोसिस से सम्बन्ध है। ख़ून में बढ़े बुरे लाइपोप्रोटीनों को

घटाने के लिए आहार, निद्रा, तनावहीनता, व्यायाम, नशामुक्ति और ज़रूरत पड़ने पर दवाएँ सभी का प्रयोग करना चाहिए। यह ठीक है कि सभी को दवाएँ खाने की ज़रूरत नहीं होती और अनेक बार कोलेस्टेरॉल-स्तर जीवनशैली को सुव्यवस्थित करने से भी नियन्त्रित रखा जा सकता है। लेकिन यह कहना कि कोलेस्टेरॉल घटाने वाली दवाओं की किइस को ज़रूरत ही नहीं है और ये दवाएँ अकारण ही डॉक्टर लिख रहे हैं-- कोरी अव्यावहारिक नादानी है। ये दवाएँ सबके लिए चाहे न हों, बहुतों के लिए आवश्यक हैं और उन्हें लेनी भी चाहिए।

यदि आपका कोलेस्टेरॉल बढ़ा हुआ है, तो डॉक्टर से मिलें। पूछें कि जीवनशैली बदलने से कंट्रोल होगा अथवा नहीं। जीवनशैली तो ज़रूर बदलें। फिर दवा पर डॉक्टर से बात करें और उनकी सुनें। सर्वदा सन्देह स्वास्थ्य की हानि करेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

सत्यवाची विज्ञान की सुनें, उत्तरसत्य बाँटते छद्मविज्ञान की नहीं।
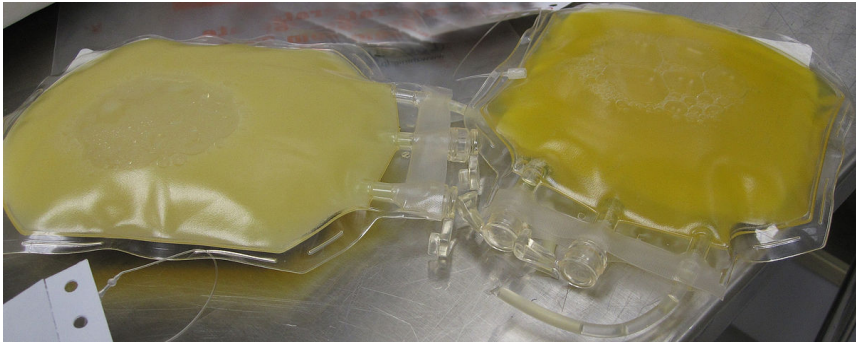
(चित्र में ब्लडबैंक में रखे फ़्रेश फ़्रोज़न प्लाज़्मा की दो थैलियाँ। बायीं ओर हायपरकोलेस्टेरोलीमिया के रोगी की, दायीं सामान्य व्यक्ति की। देखिए कि कोलेस्टेरॉल की बढ़ी मात्रा कैसे ख़ून को दूधिया-सफ़ेद कर देती है।)

(समाप्त)